

## भारतीय संगीत में विदेशी संस्कृति का प्रभाव

### सारांश

भारतीय संगीत की ओर आकर्षित होकर तमाम विदेशी कलाकार और संगीत प्रेमी भारत में आते रहे। उनके सम्पर्क का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ा, उससे संगीत भी अछूता नहीं रहा। ईसा के पूर्व से आज तक कई देशों के साथ भारत और भारतीय संगीत का सम्पर्क और सम्बन्ध रहा। ऐतिहासिक विवेचन के साथ समय-समय पर भारतीय संगीत पर भी कुछ विदेशी प्रभाव रहा और आज भी हो रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में यही तथ्य विस्तृत विवरण के साथ प्रस्तुत किए जाने का प्रयास किया जा रहा है।

**मुख्य शब्द** : संस्कृति, संगीत, दर्शनिक, श्रुति स्वर, नाट्यशास्त्र विद्वान, Music Civilization तबला, परम्परागत।

### प्रस्तावना

प्रत्येक राष्ट्र का संगीत उसके सांस्कृतिक उत्थान-पतन का द्योतक होता है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि उन राष्ट्रों का सांस्कृतिक विकास अधिक गतिमान रहा है, जिनका सम्पर्क अन्य राष्ट्रों से निरन्तर बना रहा है, क्योंकि उनमें संस्कृति के पारस्परिक आदान-प्रदान के क्रम ने नव-नवीन विशेषताओं के उन्मेष की प्रचुर सम्भावनाएं निर्मित की। इसी पारस्परिक विनिमय ने समय-समय पर मिश्रित संस्कृति को जन्म दिया, जो निश्चित रूप से प्रगतिशील थी। मानव-समूह जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर गये तो यह सांस्कृतिक सम्पदा भी उनके साथ भ्रमण करती रही। कर्ट सैक्स के मतानुसार, इसका प्रसाद मुख्यतः युद्ध के सिपाहियों, धार्मिक संस्थाओं, व्यापारिकों तथा वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से हुआ। प्राचीन सभ्यताओं में उनका विचार है कि-

“The Egyptians borrowed from the Mesopotamia and Syria, the Jews from the Phoenicians, the Greeks from create and Asia Minor.”

सुमेरिया, मिश्र, यूनान आदि प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्रों से भारत थोड़ा दूर पड़ता है, अतः अपनी भौगोलिक परिस्थितियों और प्राकृतिक सीमाओं के कारण यह एक विशिष्ट संस्कृति का जनक रहा है। उत्तर में उत्तुंग हिमालय की अभेद्य व सुदृढ़ भिति द्वारा रक्षित होने के कारण यह उपमहाद्वीप तिब्बत, चीन तथा एशिया के अन्य भूखण्डों से विलग रहा और दक्षिण, पूर्व व पश्चिम में क्रमशः हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर की सामुद्रिक सीमाओं में बद्ध रहने के कारण विश्व के अन्य क्षेत्रों से असम्बद्ध रहा। परिणामस्वरूप यह अन्य राष्ट्रों से निरपेक्ष और स्वावलम्बी संस्कृति के निर्माण में संलग्न रहा। यहां की नैसर्गिक सम्पन्नता ने विराट् पर्वतश्रेणियों, विशाल उपजाऊ मैदानों, कल-कल करती सरिताओं और अथाह सिन्धुओं के रूप में सांस्कृतिक विकास के लिये भरपूर सुविधायें एवं उपादान प्रदान किये। हमारे आदि मनीषियों की चिन्तनप्रधान आध्यात्मिक प्रवृत्ति और भौतिकता के प्रति उदासीनता इसी परिवेशगत विशिष्टता के परिणाम है। इस प्रवृत्ति की स्पष्ट छाप अन्य कलाओं के समान ही भारतीय संगीत पर भी पूर्णतः लक्षित होती है।

भारत की सम्पन्नता से आकर्षित होकर ही अन्य विदेशी जातियां प्राचीन काल से यहां आती रही। उनके सम्पर्क का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ा। यहां के संगीत के गायन, वादन और नृत्य आदि रूप भी इन प्रभावों को ग्रहण करके समयानुसार परिवर्तित और विकसित होते रहे। ईसा से पूर्व और पश्चात् के कई सौ वर्षों तक भारत व यूनान का सम्पर्क अधिक रहा। अतः प्राचीन भारतीय और यूनानी संगीत के अनेक तत्वों में साम्य दिखाई पड़ता है।

बौद्ध युग के अन्त तक भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो चुका था। इनके शासन आपसी संघर्ष में ही व्यस्त थे। देश की राजनीतिक स्थिति



**राजकुमार त्रिपाठी**

प्रवक्ता,  
संगीत विभाग,  
हे0न0ब0 गढ़वाल केन्द्रीय  
विश्वविद्यालय, श्रीनगर  
गढ़वाल, उत्तराखण्ड

अत्यन्त विषम थी, जिसका लाभ उठाकर विदेशी आक्रान्ता देश की उत्तर-पश्चिमी सीमा से भारत में आने लगे थे। ईसा से लगभग पांचवी शताब्दी पूर्व फारस के शासक दारायुष ने तक्षशिला पर आक्रमण किया था। तत्पश्चात् इंडोबैक्टियंस अथवा बाख्त्रियों, शकों (सीथियन) तथा कुषाणों ने भी देश के विभिन्न भागों पर अपना आधिपत्य जमाया। 326 ई0 पूर्व सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया और देश के उत्तरी-पश्चिमी भाग में पंजाब तक अपना आधिपत्य जमा लिया। डॉ0 बलदेव प्रसाद का कथन यूनान के प्रभाव की पुष्टि करता है— “भारत का यवन लोगों से परिचय सर्वप्रथम ईसा-पूर्व की पांचवी सदी में हुआ, जबकि पंजाब से लेकर यूनान तक का क्षेत्र ईरानी शासक दारायुष के अधिकार में आया। पाणिनी के समय (चौथी शताब्दी ई0 पूर्व) में ग्रीक-भाषा का अध्ययन पश्चिमी भारत में होता था, बाद में तो गान्धार से लेकर मगध तक का क्षेत्र ग्रीकों, बैक्ट्रियनों द्वारा आक्रान्त होता रहा, जिसका अन्त पुष्यमित्र शुंग ने किया। दूसरी सदी ई0 पूर्व से लेकर ईसा बाद की दूसरी सदी तक के पश्चिमी भारत के सिक्कों पर राजाओं के नाम ग्रीक लिपि एवं भाषा में हैं।”

प्रो0 ओ0 लिरी की मान्यता है कि प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस भारत आया था और यहां के संगीत, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र व अन्य विषयों का अध्ययन करके पुनः यूनान गया। वहां पर इनमें सम्वर्द्धन-संशोधन करके इनका प्रचार किया। कुछ अन्य विद्वानों का इस सन्दर्भ में विचार है कि श्रुति-स्वर-विभाजन की व्यवस्था का आरम्भ यूनानी संगीत में भरत के समय से बहुत पूर्व हो गया था। कर्ट सैक्स के अनुसार— “ईसा के बाद प्रथम शताब्दी के आरम्भ में एक जहाज-वाहक की डायरी ‘पेरिप्लस मुरिस एरिथ्रेई’ में कहा गया है कि ‘मेरे समय में भारत ने मिस्र से मूसीकी का आयात किया, केडिस के इयोडोक्सिस ने भारत को जहाज से गाने वाली लड़कियां (मौसिक पैडिस कदिरया) भेजी, और भूगोलवेत्ता स्ट्रबो अपने पाठकों को सलाह देते हैं कि भारतीय राजाओं का समर्थन प्राप्त करने के लिये उन्हें संगीत-वाद्य अथवा गाने वाली सुन्दर लड़कियां भेंट की जाये।” इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यूनानियों के आगमन से भारतीय संगीत प्रभावित हुआ।

प्राचीन भारतीय संगीत का प्रामाणिक ग्रन्थ भरत का ‘नाट्यशास्त्र’ माना जाता है, जो मुख्यतः नाटक का लिखित है, किन्तु नाटक के एक अंग के रूप में तत्कालीन संगीत की भी विस्तृत जानकारी देता है। उस समय संगीत नाटकों का अनिवार्य अंग था। यूनान में भी उस काल में नाटकों का सर्वाधिक प्रचलन था तथा संगीत, नृत्य, वाद्यवृन्द आदि का विकास मुख्य रूप से उसके एक अंग के रूप में ही हुआ। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तू की तरह ही भरत भारतीय कला सिद्धान्तों के जन्मदाता माने जाते हैं भरत का समय अधिकांश विद्वान तीसरी-चौथी शताब्दी मानते हैं और अरस्तू का समय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी है। अरस्तू और भरत, दानों के ही मत से अच्छे संगीतज्ञ को विभिन्न विद्याओं का ज्ञाता होना चाहिए। इन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संगीतज्ञ को अनेक आवश्यक विषयों

जैसे-भाषा, काव्य, छन्द, रस, दर्शन-शास्त्र, इतिहास, नाट्य-शास्त्र आदि की जानकारी होना आवश्यक है। आधुनिक स्वर-सप्तक में जो स्थान षड्ज को प्राप्त है, वही भरत के समय में मध्यम स्वर को था। उसे ‘अविनाशी स्वर’ कहा जाता था, अर्थात् उस काल में प्रचलित औडव और षाडव जातियों में अन्य स्वर वर्जित हो सकते थे, किन्तु मध्यम कभी वर्जित नहीं होता था। मध्यम स्वर की यही स्थिति प्राचीन यूनानी संगीत में भी मिलती है। इसे वहां ‘मेसां’ कहते थे। यूनानी पाइथागोरस के सप्तक से ‘डोरियन’, ‘फ्रीजियन’, ‘लीडियन’ आदि छह ग्रामों का विकास हुआ था। उनके सम्पर्क में आने से भारतीय संगीत पर भी प्रभाव पड़ा होगा। यूनान में ‘डोरियन’ सप्तक को शुद्ध सप्तक माना जाता था, जो भरत के षड्ज-ग्राम से साम्य रखता है। वहां पर ‘लीडियन’ को ‘डोरियन’ की अपेक्षा कम महत्व प्राप्त था। ‘लीडियन’ भारतीय विलावल (तीव्र मध्यमयुक्त) के समान था। भरत का स्वर-ग्राम अवरोहात्मक था और प्राचीन यूनानी स्वर-ग्राम भी अवरोहात्मक होते थे। मूर्च्छनाओं को वहां ‘मोडस’ कहा जाता था, जिनसे विभिन्न धुनों (मेलोडी) की रचना होती थी। इसके पश्चात् पाश्चात्य देशों में जब हारमनी का प्रचार हुआ, तब ये सभी ‘मोडस’ समाप्त हो गये। इनका स्थान मेजन व माइनर स्केल्स ने ले लिया, जो आज तक प्रचलित है। भरत ने अपने स्वर-ग्रामों की रचना सम्वाद-सिद्धान्त के आधार पर की थी तथा यह ऐतिहासिक सत्य है कि भरत के ‘नाट्यशास्त्र’ से पूर्व यूनानी विद्वान् सम्वाद-सिद्धान्त से परिचित थे। आरोह में ‘षड्ज पंचम-भाव और अवरोह में ‘षड्ज मध्यम-भाव’, जिसको ‘Cycle of Fifth’ कहते हैं, यूनान के विद्वानों ने भरत के ‘नाट्यशास्त्र’ से बहुत पहले ही समझाये थे। दोनों ही पद्धतियों की स्वर-स्थापना में ‘षड्ज पंचम-भाव’ को विद्यमान साम्य, जैसे सप्तक में मध्यम स्वर का महत्व, ग्राम-मूर्च्छना के स्वरों का अवरोह-क्रम, स्वर-स्थापना में षड्ज पंचम-भाव का प्राधान्य आदि के आधार पर कहा जा सकता है कि भरत की संगीत-पद्धति पर यूनानी प्रभाव पड़ा।

मध्यकालीन भारतीय संगीत पर मुस्लिम-संगीत का प्रभाव परिलक्षित होता है। दसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में महमूद गजनवी के तूफानी आक्रमणों से मुसलमानों का भारत में प्रवेश हुआ और शनैः-शनैः उनके साम्राज्य की स्थापना हुई। सदियों तक उन्होंने इस देश पर शासन किया तथा अपनी रूचि के अनुरूप यहां की संस्कृति व कलाओं को परिवर्तित किया। यहां का संगीत अपनी प्राचीनता से हटकर एक नए रूप में विकसित होने लगा। जिसमें दोनों का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। दसवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक का समय अनेक दृष्टिकोणों से दुर्भाग्यपूर्ण कहा जा सकता है। इन पांच शताब्दियों में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण संगीत की प्राचीन परम्परा विलुप्त हो गई। यही कारण है कि तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया भारतीय संगीत का प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘संगीत-रत्नाकर’ सोलहवीं शताब्दी तक दुरुह और अगम्य बन गया। संगीत अपने शास्त्रीय पक्ष से विलग हो गया। इस काल के संगीत की स्थिति का अनुमान कैप्टन विलड के निम्नलिखित उद्धरण से किया जा सकता है—

"The conquest of India by the Muhammadan Princes forms a most important epoch in the history of its music, from this time we may date the decline of all arts and sciences purely Hindu, for the muhammandans were not great patrons to learning, and the more bigoted of them were not only great iconoclasts, but discouragers of the learning of the country. The progress of the theory of Music once arrested, its decline was speedy; although the practice which contributed to the entertainment of the princes and nobles, continued until the time of Muhammad Shah, after whose reign history is pregnant with facts replete with dismal Scenes."

मध्ययुगीन मुस्लिम शासकों का आश्रय पाकर संगीत का उद्देश्य ही बदल गया। प्राचीन भारतीय संगीत का मुख्य लक्ष्य ईश्वराराधन था, जबकि मध्य-काल में उसका लक्ष्य मनोरंजन हो गया। भक्ति-रस का स्थान श्रृंगार-रस ने ले लिया। इसी भांति शासकों की कामुक प्रवृत्तियों और विलासिता के प्रभाव से संगीत की विविध विधाओं में भी चमत्कार-प्रदर्शन व श्रृंगारिकता की स्थूल वृत्तियाँ अधिक महत्व पाने लगी। यह कला सुल्तानों, बादशाहों, नवाबों और राजाओं की गुणावलियाँ गाने, उन्हें प्रसन्न करने तथा उनकी विलासी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने का साधन बन गई। भारतीय संगीत पर अरबी, फारसी और यूनानी प्रभाव दर्शाते हुए स्वामी प्रज्ञानानन्द लिखते हैं-

"However we find that during the reign of Mughal Emperors Humayun and Akbar India was influenced by Persia in the domains of Music and Architecture. It is also found that Amir Khusru introduced some Persian modes and tunes in the system of Indian Music, during the reign of Alauddin Khilji in the 14th, Century. However it is found in history that not only countries like Persia, Arabia and Greece are indebted to other ancient civilized countries for different materials of culture and Civilization in different times."

प्राचीन भारतीय संगीत के प्रतिनिधि ग्रन्थ भरत का नाट्यशास्त्र और मतंग-कृत 'बृहद्देशी' थे, जिनसे तुलना करने पर मध्यकालीन भारतीय संगीत के स्वर, स्वर-ग्राम, राग, ताल, वाद्य, नृत्य आदि तत्वों में प्रचुर परिवर्तन लक्षित होते हैं। फारसी संगीत में बारह मुकामों का उल्लेख मिलता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं-

1. रहावी
2. हुसैनी
3. रास्त
4. हिजाज
5. बुजुर्ग
6. कोचक
7. ईराक
8. इस्फहान
9. नवा
10. उश्शाक

11. जंगूला
12. बुसूलीक

इन बारह मुकामों में प्रत्येक से दो शोबाओं की उत्पत्ति मानी गई। इसके अतिरिक्त वहाँ पर अन्य सरल धुनें या तर्जे भी प्रचलित थी, जिन्हें 'गोशा' कहा जाता था। ऐसे अड़तालीस 'गोशा' अब तक खोजे जा चुके हैं। इन मुकामों, शोबाओं और गोशों की समानता विलियम जोन्स और बिलार्ड ने भारतीय राग-रागिनी पद्धति के रागों, रागिनियों, उनके पुत्र व पुत्र वधुओं से दर्शाई है। उन्होंने लिखा है कि-

"The native of Persia, like those of India, reckon their ancient music as comprising of twelve classes of Muqams, each of which has, belonging to it two Shobush and four Goshahs. The Muqams being generally considered equivalent to the ragas of India, the Shobush being esteemed their raginis and the Goshahs their Putras and Bharjyas."

आचार्य वृहस्पति ने भारतीय संगीत में प्रचलित मेल-राग-वर्गीकरण या टाट-राग-वर्गीकरण पद्धति का उद्गम ईरानी मुकाम पद्धति से माना है। भारतीय रागों के समय-सिद्धान्त और रस-सिद्धान्त का साम्य भी ईरानी मुकामों से दृष्टिगोचर होता है। वहाँ पर मुकामों का गान-समय निर्धारित था और उनसे विभिन्न रसों की उत्पत्ति मानी जाती थी, जैसे उश्शाक, वसूली और नवा से वीर रस तथा बुजुर्ग, कोचक और जंगूला से करुण रस की अभिव्यक्ति मानी गई है। रहावी, हुसैनी और हिजाज अच्छी इच्छा के जलक कहे गये हैं। जंगूला और हुसैनी का गायन-समय सूर्योदय से तीन घंटे बाद, रास्त और ईराक का दोपहर, नवा का अर्द्धरात्रि, इस्फहान का अर्द्धरात्रि के बाद, बुजुर्ग का जंगूला के बाद, उश्शाक का सूर्यास्त के समय, कोचक का सूर्यास्त से तीन घंटे पूर्व, बसूलीक का दिन में दोपहर बाद और रहावी का सूर्योदय तक बताया गया है। विलियम जोन्स की मान्यता है कि फारसी राग और धुनें यद्यपि अपने आरामदेह और मधुर प्रभाव के कारण जीवित प्राणियों के अन्तस्तल को छूती है, किन्तु फिर भी वहाँ के विनासी उनको केवल सैद्धान्तिक विज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं। जौन माल्कम ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ पर्सिया' में लिखा है कि प्राचीन काल में फारसी संगीत वैज्ञानिक ढांचे पर आधारित था, किन्तु वहाँ के संगीतज्ञों ने एक कला के रूप में इसका उतना विकास नहीं किया, जितना भारतीय संगीतज्ञों ने किया।

मुसलमान मरू-प्रदेश के निवासी थे, अतः उन्हें अपनी आजीविका के लिये कठोर परिश्रम करना पड़ता था। इन्हीं परिस्थितियों में उन्होंने अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रकृति के गुणगान की प्रवृत्ति को जन्म दिया। वीरता, अश्वारोहण, अतिथि-सत्कार तथा साहस के लिये वे प्रसिद्ध थे, जिसके कारण उनका संगीत भारतीय संगीत की अपेक्षा अधिक कलात्मक, रोमांटिक तथा यथार्थवादी हुआ। वहाँ की गजल-गायकी इस बात का पुष्ट प्रमाण है, जो आज भारतीय संगीत में भी अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है।

मुस्लिम गायकी में अनुनासिक ध्वनियां उत्पन्न करने की विशेष प्रवृत्ति थी। इसके सर्वथा विपरीत भारतीय ध्रुपद में काकु-ध्वनि की प्रवृत्ति थी। उदाहरणार्थ राजा मानसिंह तोमर के समय के प्रसिद्ध गायक नायक बख्शू तथा धोंधू ध्रुपद गायन के समय अपनी दहाड़ती हुई आवाज के कारण ही महान समझे जाते थे। अनुनासिक ध्वनि के प्रयोग से मुसलमान गायक स्वर की बारीकियां दिखा सकते थे, अर्थात् वे सूक्ष्म स्वरवादी थे। उनकी गायकी की एक विशेषता शीघ्रता से एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाने की (घसीट) थी, इसलिये उनकी गायकी झटकों या कर्कशता से रहित थी। मुस्लिम गायकी की उपर्युक्त विशेषताएं आधुनिक भारतीय संगीत में स्पष्टतः लक्षित की जा सकती हैं। मुस्लिम गायकी में सूक्ष्म ध्वनियों की रक्षा हेतु संगीत के लिये अरबी रबाव और दाराबुक्के (भारतीय तबला) का प्रयोग होता था। इसी प्रभाव को ग्रहण करके भारतीय खयाल गायकी में सारंगी व तबले का प्रयोग आरम्भ हुआ। इससे पूर्व ध्रुवपद गायकी में वीणा और मृदंग की संगति की जाती थी। मुस्लिम प्रभाव के कारण ही भारतीय संगीत में खयाल के अतिरिक्त गजल, कव्वाली, तराना, कौल, टप्पा आदि गानशैलियों का प्रचलन हुआ।

प्राचीन भारतीय संगीत में भरत के द्वारा स्वरों की संख्या सात शुद्ध और दो विकृत बताई गई थी। जिनके आधार पर बारह मुकाम बनाए गये थे। मुस्लिम स्वरों के नाम भी बारह अलग-अलग थे। मध्यकाल में भारतीय संगीत के अन्तर्गत यद्यपि स्वरों के नाम तो प्राचीन परम्परा के अनुरूप ही रखे गये, किन्तु सा प के अतिरिक्त अन्य पांच स्वरों को विकृत करके सप्तक के कुल स्वरों की संख्या बारह कर दी गई। 'सा' और 'प' स्वरों को अचल स्वर भी मध्यकाल में ही माना जाने लगा। इससे पूर्व भरत ने अपने मध्यम ग्राम में पंचम स्वर को स्पष्टतः त्रिश्रुतिक लिखा था, जो उसके चल होने का प्रमाण है। तीव्र 'म' या प्रति- 'म' का जो रूप मध्यकाल और आधुनिक काल में प्रयुक्त हुआ, वह प्राचीन काल में नहीं था। मध्यकाल में स्वर-स्थापना और स्वरों की विकृत स्थिति पर विदेशी प्रभाव की पुष्टि आचार्य वृहस्पति के निम्नलिखित कथन से भी होती है- "उत्तर भारतीय सितार या सरस्वती वीणा पर सारिकाएं स्थापित करने का वर्तमान क्रम मध्ययुगीन है, जो शाडर्डदेव के पश्चात् स्थिर हुआ है। इन वाद्यों पर सारिकाओं की वर्तमान स्थापना का प्रकार ईरानी ढंग से प्रभावित है। ईरान के इसी प्रभाव ने भारतीय संगीत में कोमल ऋषभ एवं कोमल धैक्त्त जैसी स्पष्ट संज्ञाओं को जन्म दिया है। वर्तमान तीव्र ऋषभ का एक श्रुति चढ़कर पंचम से सम्वाद करने लगना भी वैदेशिक प्रभाव है।"

मध्यकाल में मुस्लिम प्रभाव से भारतीय संगीत के अन्तर्गत कई नए राग व ताल भी प्रचलित हुए, जैसे-तुरुष्क गौड़, तुरुष्क तोड़ी, साजगिरि, यमन, जीलफ, सरपदा, बाखरेज, शहाना, हुसैनी, हिजाज, जंगूला, रहावी आदि राग और पश्तो, सूल्फाख्त, दादरा, कहरवा, कव्वाली, रूपक, खेमटा आदि तालें, जिन्हें अधिकांशतः मुस्लिम संगीतज्ञ ही गाते बजाते थे।

मुस्लिम साहचर्य से ही भारतीय संगीत में कानून, रबाब, सरोद (शहरूद), सितार, सारंगी, संतूर, ताऊस, शहनाई, नौबत-नक्कारा, तबला, डफ, दायरा, मरफा, ताशा आदि वाद्यों का विकास हुआ। इन वाद्यों पर बजाई जाने वाली शैली को 'बाज' कहा जाने लगा। इन वाद्यों व इनकी शैली से सम्बन्धित अनेक शब्द भी प्रचार में आए जैसे- मिजराब, जवा, पर्दा, तरब, जमजमा, मुर्की, खटका, जर्ब, गिटकरी, पेशकार, कायदा, नगमा, साज, साजिंदे।

मध्ययुगीन भारतीय संगीत पर विदेशी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है- "अरबी और फारसी शैलियों का संयोग हमारी परम्परा को जब मिला, तो उसमें आकर्षण का समावेश हुआ और उसकी भारी व कठिन परम्परा को हल्के-फुल्के और सरल कण्ठ का योग मिला। इस नई धारा ने प्राचीन भारतीय गाढ़े राग को तरल कर दिया और शास्त्रीय तथा लौकिक परम्पराओं की गंगा-जमुना में सरस्वती की एक तीसरी धारा मिला दी, जिससे भारतीय संगीत का इस प्रकार त्रिवेणी संगम चरितार्थ हुआ।

आधुनिक काल में भारतीय संगीत की विविध विधाओं पर पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होता है। कण्ठ-संगीत के क्षेत्र में मुख्यतः समूह-गान पर यह प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय संगीत के अन्तर्गत समूह-गान में पहले सभी गायक-गायिकाएँ गीत को एक ही स्वर और एक ही ढंग से गाते थे, जिसका उद्देश्य रागात्मक प्रभाव उत्पन्न करना होता था, किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से आज समूह-गान के साथ वाद्ययंत्रों का अधिक प्रयोग किया जाने लगा है, जिनसे पार्श्व-ध्वनियों के रूप में स्वर-संक्रम उत्पन्न किये जाते हैं तथा भिन्न-भिन्न गायक एक ही गीत-पंक्ति का उच्चारण भिन्न-भिन्न स्वरों में करके हारमनी का पुट देते हैं। इनसे उत्पन्न संगीतिक प्रभाव परम्परागत रागात्मक प्रभाव की तुलना में नितान्त भिन्न और आश्चर्यजनक होता है।

आधुनिक भारतीय संगीत में अनेक पाश्चात्य वाद्यों का प्रचार बढ़ रहा है। जिनमें से कुछ वाद्य तो भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रमुखता ग्रहण कर चुके हैं। जैसे- वायलिन, हारमोनियम, गिटार आदि। अन्य कई वाद्य ऐसे हैं, जिनका प्रयोग वृन्द-वादन, सिने-संगीत, सुगम-संगीत आदि में किया जाता है।

वृन्द-वादन की परम्परा को एक नया मोड़ आधुनिक काल में पाश्चात्य सम्पर्क से मिला है। समूह-वादन की परम्परा प्राचीन काल से रही है। पहले इसे 'तूर्य' कहा जाता था और भरत व शाडर्डदेव ने इसके लिये 'कुत्तप' संज्ञा का प्रयोग किया तथा सिंहभूपाल ने 'वृन्द' कहा। मुगल-काल में समूह-वादन को नौबत कहा जाता था। अकबर के समय में ऐसी कई ईरानी संगीत से प्रभावित धुनें थीं, जिन्हें वाद्य-वृन्द पर बजाया जाता था, जैसे- मुरसली, बरदाश्त, इखलाती, इब्तदायी, सिराजी, कलन्दरी, निगार आदि। वर्तमान भारतीय आर्केस्ट्रा पश्चिम से प्रेरणा ग्रहण करके उनकी तकनीक और वाद्ययंत्रों के प्रयोग से निरन्तर समृद्ध हो रहा है। सिने-संगीत इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसके अतिरिक्त स्वतंत्र वाद्यवृन्द का विकास भी भारत में द्रुत गति से हो रहा है। आधुनिक आर्केस्ट्रा के विकास में वाल्टर कॉफमैन, स्वामी विवेकानन्द

के भाई हाबूदत्त, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, तिमिरबरन, विष्णुदास शिराली, पं० रविशंकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नृत्य—कला का विकास भारतीय संगीत के अभिन्न अंग के रूप में हुआ है। प्राचीन समय में यह मनोरंजन के साथ-साथ ईश्वरोपासना का माध्यम रही। मध्ययुग में मुस्लिम शासकों की रुचि के अनुरूप इसमें श्रृंगारिकता का समावेश हुआ और उसी के अनुसार प्रस्तुति, वेशभूषा व प्रसाधन—सामग्री प्रयुक्त की जाने लगी। नृत्यों के साथ प्रयोग किया जाने वाला संगीत व संगीत—वाद्य भी ऐसे ही विकसित हुए, जिनसे उनकी श्रृंगारिक भावनाओं को उभारने में सहायता मिल सके। उदाहरण के लिए कथक नृत्य में भक्ति का स्थान श्रृंगार—रस ने ले लिया और दरबारी अदब—कायदों व चमत्कार का प्रदर्शन किया जाने लगा। इसमें 'प्रवेश' के स्थान पर 'आमद' और 'नमस्कार' के स्थान पर 'सलामी' जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा। इसकी वेशभूषा भी शाही वातावरण के अनुरूप—चूड़ीदार पायजामा व कुर्ता बन गई। मध्यकाल के अन्त तक तो इसका स्वरूप इतना विकृत हो गया कि इसे मुजरा—महफिलों की वस्तु समझा जाने लगा। आधुनिक काल में इस पर पाश्चात्य 'बैले' व रंगमंच का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ता है।

आधुनिक काल में भारतीय संगीत के अन्तर्गत पाश्चात्य 'बैले' से प्रभावित नृत्य—नाटिकाओं का प्रचार बढ़ रहा है। इनका प्रारम्भ उदय शंकर द्वारा किया गया। उन्होंने राजनीति व अन्य विषयों पर नृत्य—नाटिकाएँ निर्मित की, जिनमें पाश्चात्य तकनीक और वाद्यों का उपयोग किया गया। इसके अतिरिक्त भारतीय नृत्य—नाटिकाओं के विकास की दृष्टि से मायाराव व मृणालिनी साराभाई के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

संगीत—रचनाओं को सुरक्षित रखने, सर्वत्र एकरूपता लाने व सामूहिक शिक्षण के लिए स्वरलिपि की आवश्यकता होती है, किन्तु भारत में संगीत को गुरुमुखी विद्या माना जाता था, इसलिए स्वरलिपि के विकास की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। आधुनिक काल में इसकी उपादेयता एवं महत्व को ध्यान में रखकर ही पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर एवं पं० विष्णुनारायण भातखण्डे ने पाश्चात्य स्वरलिपि से प्रेरणा लेकर अपनी स्वरलिपि—पद्धतियों का निर्माण किया। भारतीय संगीत के आधुनिक ग्रन्थकारों में से कई ने तो पाश्चात्य 'स्टाफ—नोटेशन' को ही अपनाया है। चित्रपट संगीत में 'स्टाफ—नोटेशन' ही काम में लिया जाता है तथा भारतीय संगीत के विदेशों में प्रचार के लिए भी 'स्टाफ—नोटेशन' ही उपयोगी है।

आधुनिक काल में पाश्चात्य प्रभाव से ही संगीत के अध्ययन क्षेत्र का विस्तार हुआ है। संगीत—शास्त्र के ज्ञान को अधिक सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक स्वरूप देने के उद्देश्य से ध्वनि—विज्ञान, सौन्दर्य—शास्त्र, मनोविज्ञान, शरीर—रचना—विज्ञान, समाज—शास्त्र, दर्शन—शास्त्र आदि का अध्ययन किया जाने लगा है।

पश्चिमी प्रभाव ने जहाँ एक ओर संगीत—कला के विकास के लिए नवीन क्षेत्रों का उद्घाटन किया, वहाँ दूसरी ओर इसके उद्देश्य सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी

परिवर्तन कर दिया। पहले भारतीय कलाकारों का लक्ष्य 'स्वातः सुखाय' अथवा 'परजनहिताय' कला की साधना करना था किन्तु आज कलाकारों का उद्देश्य अपनी कला के माध्यम से व्यवसाय करना हो गया है। कलाकार अपनी कला के द्वारा अर्थोपार्जन करने और लोकप्रियता अर्जित करने में जुट गए हैं, जिससे इसका ह्रास हो रहा है।

### उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में यही तथ्य विस्तृत विवरण के साथ प्रस्तुत किए जाने का प्रयास किया जा रहा है।

### निष्कर्ष

इस प्रकार प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की दीर्घ अवधि में भारतीय संगीत विदेशी तत्वों के ग्रहण और समय व परिस्थितियों के अनुरूप रूपान्तर करते हुए निरन्तर विकसित होता रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में बढ़ते हुए यातायात के साधनों और संचार—सुविधाओं के कारण विश्व के सभी राष्ट्र एक—दूसरे के समीप आते जा रहे हैं। अतः समन्वय की यह प्रक्रिया वेगवती हो गई है, जिससे भारतीय संगीत भी अछूता नहीं है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Music of India – Wiulliam Jones and N. Augustus Willard.*
2. *संगीत और परम्परा – श्री भगवतशरण उपाध्याय, नाद—निनादश्री।*
3. *संगीत चिन्तामणि – आचार्य बृहस्पति*
4. *नाट्यशास्त्र – भरतमुनि*
5. *संगीत रत्नाकर – शास्त्रदेव*
6. *ताल परिचय – गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव*